

---

## इकाई 16 ग्राम समुदाय

---

### इकाई की रूपरेखा

- 16.0 प्रस्तावना
- 16.1 ग्राम समुदाय क्या है?
- 16.2 पंच या पंच मुकदम
- 16.3 कार्य और शक्तियाँ
- 16.4 सारांश
- 16.5 अभ्यास

---

### 16.0 प्रस्तावना

---

हेरोल्ड एच. मान इस बात पर बल देते हैं कि भारत का हृदय इसके गाँवों में बसता है और वह दावा करते हैं कि "यदि हम किसी देश के इतिहास को समझना चाहते हैं तो हमें विजयों और शासन प्रणाली, राजकुमारों तथा उनके कर्मचारी गणों या महलों एवं उनके निवासियों की दिखावटी तड़क-भड़क से संबंधित दस्तावेजों के बजाए गाँवों के जीवन के उतार-चढ़ाव के अस्पष्ट अनछुये रिकार्ड की खोज करनी चाहिए"।

ग्राम समुदाय को अधिक सूक्ष्म तरीके से समझने के लिए, यह जानना आवश्यक है कि गाँव क्या है?

गाँव के अस्तित्व के संदर्भ पूर्व-औपनिवेशिक भारत के स्रोतों में मिलते हैं। देह (गाँव के लिए प्रयुक्त फारसी शब्द) और गाव या गाँव शब्द का प्रयोग साहित्यिक ग्रंथों और लोक परंपराओं में बार-बार किया गया है। मुगल शासकों के प्रादेशिक विभाजन से हम भली-भाँति परिचित हैं। यह विभाजन, नदियों, पर्वतों, मरुस्थलों और भाषाओं के आधार पर किए गए थे। *आइन्-ए अकबरी* में भी यह दर्शाया गया है कि मुगल साम्राज्य किस प्रकार *सूबों/सरकारों/परगनों* में विभाजित था। *परगनों* में गाँवों की संख्या अलग-अलग थी। अन्य ग्रंथों के अलावा, आमेर-जयपुर दस्तावेजों से, खासतौर पर अडसट्टों से, इन गाँवों की संख्या का पता चलता है। राजस्थान और हरियाणा से प्राप्त सत्रहवीं शताब्दी के दस्तावेज गाँवों में किसानों की कम संख्या को दर्शाते हैं, जिससे पूर्व-औपनिवेशिक भारतीय गाँवों के छोटे आकार का पता चलता है। दक्खन, दक्षिण भारत, आदि क्षेत्रों से प्राप्त दस्तावेज भी, छोटे पुरों से लेकर घनी आबादी वाली बस्तियों वाले गाँवों के अलग-अलग आकारों को दर्शाते हैं। मारवाड़-रा परगना-री विगत जैसे ग्रंथों में भी प्रादेशिक पहचान परिलक्षित होती है। ये स्रोत गाँव के निवासियों और पदाधिकारियों की सामाजिक एकात्मकता की भी पहचान कराते हैं।

*मार्कण्डेय पुराण* में गाँव को "कृषियोग्य भूमियों से घिरे हुए स्थान और जहाँ उन भूमियों पर फसल उगाने में सक्षम कृषकों की सहायता करने के लिए उपलब्ध अनेक लोग निवास करते हों" के रूप में परिभाषित किया गया है।

मोनियर विलियम्स इस बात जोर देते हैं कि "यह एक ऐसा क्षेत्रीय विभाजन है जिसमें सबकी भलाई के लिए निश्चित व्यवसायों के सतर्कतापूर्ण विभाजन के साथ, हर परिवार की अन्वोन्याश्रितता और सामुदायिक हित, और राजनीतिक स्वतंत्रता तथा स्वायत्तता की पक्की व्यवस्था हो" ।

इरफान हबीब के अनुसार, "गाँव को आवश्यक रूप से किसानों की ऐसी बस्ती के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो बेहतर सुरक्षा और आपस में आवश्यक वस्तुओं तथा सेवाओं के आदान-प्रदान की सुविधा के लिए एक साथ रहने के लिए एकत्र हों। गाँव को, एक समुदाय, जाति विभाजन और प्रथागत सेवाओं या वस्तु-विनिमय के संबंधों के नेटवर्क के रूप में देखा जाना चाहिए। जाति, श्रम के "अपरिवर्तनीय विभाजन का स्रोत थी" ।

ए.आर. कुलकर्णी जैसे कुछ विद्वानों के लिए गाँव घरों का एक समूह और आपस में निकटता से जुड़ी हुई एक इकाई है।

बी.डी. चट्टोपाध्याय गाँवों को परिभाषित करते हुए वर्णन करते हैं कि, "गाँव विशेष की संस्थापना निम्नलिखित तीन संघटकों का सम्मिश्रण मानी जाती है (क) वास्तु (आवासीय भूमि), (ख) क्षेत्र (कृषियोग्य भूमि), और (ग) गोचर (चरागाह)" ।

राजस्थान के राजकीय अभिलेखागार, बीकानेर में संरक्षित तकसीम दस्तावेजों (परगना के राजस्व संबंधी बहीखातों के लेखा-जोखों के सारांश) में उल्लेख है कि पूर्वी राजस्थान के गाँवों में निम्नलिखित वस्तुएँ शामिल थीं (i) बस्ती (रिहायशी क्षेत्र) (ii) राह (रास्ते/पट्टियाँ), (iii) माग्रो (चट्टानयुक्त भूमि), (iv) पहाड़ (पर्वत, यदि कोई होता था तो), (v) नाला/नदी/ताल (तालाब), (vi) सीर (विशेष राजस्व व्यवस्था के अंतर्गत भूमि), (vii) जंगल (वन), और (viii) कृषियोग्य भूमि ।

विद्वानों द्वारा उपरोक्त वर्णित विचारों से यह स्पष्ट है कि गाँवों को भिन्न-भिन्न ढंग से परिभाषित किया गया है। परंतु संक्षेप में, इसमें तीन संघटक होते हैं: (i) अलग-अलग आकार के क्षेत्र, (ii) निवासी, और (iii) मुख्य व्यवसाय के रूप में कृषि।

गाँव के सबसे महत्वपूर्ण संघटक अर्थात् निवासी ग्राम समुदाय द्वारा आबद्ध थे। मौजूदा इकाई, मध्यकाल के दौरान ग्राम समुदाय के कार्यों और शक्ति पर मुख्य रूप से प्रकाश डालती है। किसानों, कारीगरों और श्रमिकों के साथ गाँव के कुलीन-वर्ग के संबंधों पर चर्चा ग्रामीण समाज पर मौजूदा खंड की अगली दो इकाइयों में की गई है।

---

## 16.1 ग्राम समुदाय क्या है?

---

प्रश्न यह है कि ग्राम समुदाय का क्या अर्थ है और इसकी कार्य प्रणाली क्या थी? यह मुद्दा ब्रिटेन में उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में सामने आया। 'ईस्ट इंडिया' के मामलों पर गठित 'हाउस ऑफ कॉमन्स' की समिति ने 1810 में इस मुद्दे पर चर्चा की। ब्रिटेन के भारतीय प्रशासकों चार्ल्स मेटकॉफ, जेम्स मिल, एलफिंसटन और सर हेनरी मेन ने ग्राम समुदाय की संकल्पना पर विचार-विमर्श किया।

चार्ल्स मेटकाफ ने गाँवों को 'छोटे गणतंत्र' 'किसी बाहरी सम्पर्क से लगभग स्वतंत्र', 'अपरिवर्तनीय' कहा, जबकि जेम्स मिल ने उन्हें 'निगमों' का नाम दिया; एलफिंसटन का मानना था कि मध्यकाल के दौरान गाँवों ने "भारतीय जीवन पर मुहम्मदी कानून थोपने के खिलाफ प्रतिरोधक के रूप में काम किया। सर हेनरी मेन ने इसे "भूमि के एक निश्चित टुकड़े पर एक सामूहिक स्वामित्व का उपभोग करते हुए परिवारों के एक संघटित स्वचालित समूह" के रूप में वर्णित किया। उनका मानना था कि भारत में गाँवों में जहाँ किसी वंश विशेष का प्रभुत्व था तो गाँव विशेष में उस वंश के प्रमुख (ग्राम प्रमुख) का आधिपत्य जारी रहा; जबकि, जहाँ गाँव विषम जनसंख्या (विभिन्न जातियों और धर्म से संबंधित) वाला था, वहाँ व्यक्ति विशेष के प्रभुत्व के बजाए ग्राम पंचायत ने प्रमुख निकाय के रूप में काम किया। इस प्रकार, उन्होंने ग्राम समुदाय की विद्यमानता के तथ्य को 'सर्व सामान्य' रूप में नहीं देखा बल्कि गाँव विशेष के संघटन के स्वरूप पर निर्भरता की दृष्टि से देखा।

आर्थर फिलिप्स (*लैंड टैन्वोर्स ऑफ लोअर बंगाल*, कलकत्ता, 1876) ने तर्क दिया कि ग्राम समुदाय प्राचीन भारत में मौजूद था; मुस्लिम शासन की केन्द्रीयकृत प्रशासनिक प्रणाली के अंतर्गत इसका पतन हुआ। मध्यकाल के दौरान इसके पतन में ज़मींदारी प्रथा के विकास ने भी योगदान दिया। हालाँकि ग्राम प्रमुखों, पटवारियों, चौधरियों का प्रशासनिक तंत्र जारी रहा, उनके पदभार का आनन्द केवल सरकार की इच्छा पर निर्भर था और उन्हें हटाने का अधिकार सरकार ने अपने पास सुरक्षित रखा। बी.आर. ग़ोवर (2005) का मानना है कि "उन्नीसवीं शताब्दी में पाए गए भूमि धारण अधिकार पर आधारित ग्रामीण समुदायों के चिह्न ऐसे क्षेत्रों में अधिक देखे जा सकते हैं जहाँ दिल्ली के सुल्तानों या मुगलों का पूर्ण आधिपत्य स्थापित था, न कि उन क्षेत्रों में जहाँ नियमित रूप से दिल्ली सल्तनत और मुगल शासकों का कृषि प्रशासन संबंधी आधिपत्यपूर्ण रूप से स्थापित नहीं था"। वास्तव में, ग्राम समुदायों की संकल्पना, सरकार के 'हिन्दू' या 'मुस्लिम' पैटर्न के बजाए, समय-समय पर परिवर्तित हो रही क्षेत्रीय और जनजातीय प्रथाओं द्वारा नियंत्रित होती थी। तथापि, ग्राम समुदाय की मौजूदगी का कोई एक समान पैटर्न प्रतीत नहीं होता। यह पैटर्न रूप और तत्त्व के हिसाब से हर क्षेत्र में अलग-अलग था। यहाँ तक कि विभिन्न वर्गों और कार्यकर्ताओं की मौजूदगी का पैटर्न भी हर क्षेत्र में अलग-अलग था। (अधिक विवरण के लिए हमारे पाठ्यक्रम एम.एच.आई.-05 की इकाई 17, खंड 4 देखें) ग़ोवर का तर्क है कि "ग्राम समुदाय की संकल्पना, प्रचलित भूमि धारण अधिकार के स्वरूप और कृषि कार्य करने वाली तथा कृषि का काम न करने वाली जनसंख्या के बीच होने वाले संबंधों पर आधारित थी। इसका अध्ययन, क्षेत्रीय जनजातीय और वंश-आधारित (clannish) बस्तियों तथा ज़मींदारी अधिकारों एवं प्रभुत्व वाले वंशों के क्षेत्राधिकारों के संबंध में किया जाना चाहिए"।

क्षेत्रीय स्रोत ग्राम समुदायों की कार्य प्रणाली पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। राजकीय अभिलेखागार राजस्थान, बीकानेर में राजस्थानी/फारसी में संग्रहित अडसट्टा (राज्य की आय और व्यय से संबंधित राजस्व रिकॉर्ड), ज़मा खर्च (आय और व्यय), चिट्ठियाँ (विभिन्न राजस्व अधिकारियों और सरकार को तथा उनके द्वारा लिखे गए जारी किए गए पत्र), सनद (दीवान द्वारा जारी की गई, यह विभाग परिलब्धियों, विशेषाधिकारों, आदि से संबंधित सूचना रखता था), दस्तूर-उल अमल (राजस्व दरों

की अनुसूची) जैसे ग्रंथ सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के दौरान ग्राम समुदाय के स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। पंजाब के लिए, हमारे पास खालसा दरबार रिकॉर्ड (इसमें 1811 से 1849 तक महाराजा रणजीत सिंह के शासन काल का राजस्व रिकॉर्ड है) और पटवारी रिकॉर्ड (गाँव के पटवारी गाँव के लेखाकार - द्वारा संग्रहित गाँव का लेखा-जोखा) है। थलजादा (गाँव के लेखाकार द्वारा संग्रहित भूमि अधिकारों/भूमि स्वामित्व संबंधी रिकॉर्ड) और तालेबंद (गाँव के राजस्व की वास्तविक प्राप्तियाँ और व्यय) जैसे पूना अभिलेखागार में संग्रहित मराठी रिकॉर्ड भी मध्यकाल के दौरान महाराष्ट्र के गाँवों के सामाजिक-आर्थिक जीवन पर विशेष प्रकाश डालते हैं। गोवा की ग्राम प्रणाली का अध्ययन भी गोवा के अभिलेखागार में संग्रहित ग्राम समुदायों से संबंधित विशाल मराठी रिकॉर्ड की सहायता से किया जा सकता है। इसी प्रकार, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु के सरकारी अभिलेखागार में भी, ग्राम समुदायों से संबंधित बहुमूल्य रिकॉर्ड संग्रहित हैं।

ग्राम समुदाय, ग्रामीण समाज का एक मजबूत स्तंभ था। जहाँ कहीं किसी गाँव में संस्थागत या सामाजिक व्यवस्था, सहयोग या आश्रितता के किसी रूप में गाँव की जनसंख्या से संबंधित थी, ऐसी स्थिति में ग्राम समुदाय का अस्तित्व था। यह गाँव में कानून और व्यवस्था बनाये रखने, राजस्व के भुगतानों और अन्य सम्बद्ध मामलों जैसी समस्याओं से संबंधित काम करती थी।

पहली या दूसरी शताब्दी में ही हमें बौद्ध धर्म से संबंधित पुस्तक मिलिन्दपन्हो में इस बात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि ग्राम समुदाय किसे कहा जाता था और स्पष्टतः महिलाएँ, गुलाम लड़कियाँ/गुलाम पुरुष, किराए पर रखे गए श्रमिक, नौकर, सामान्य ग्रामवासी, बीमार व्यक्ति, आदि इस सूची में शामिल नहीं थे। इस प्रकार इसमें स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि किस प्रकार ग्राम समुदाय में अधिकतर गाँव के समाज का उच्च वर्ग ही शामिल था। उपरोक्त संदर्भ से यह बात स्पष्ट है कि गाँव सामाजिक रूप से स्तरीकृत थे और गाँव के मामलों पर उस ऊपरी तबके द्वारा निर्णय दिया जाता था जो गाँव के मुखिया के साथ, बेगार लेने के हकदार थे।

मध्यकाल में किसान, गाँव के नौकर और श्रमिक ग्राम समुदाय का हिस्सा होते थे। तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि पाई काश्त (बाहरी कृषक) तथा मुज़ारियान (काश्तकार) ग्राम समुदाय के कार्यों के प्रबंधन में शायद ही कोई भूमिका निभाते थे, जैसा कि ग्रोवर द्वारा सही वर्णित किया गया है। तथापि, ग्रोवर का तर्क है कि ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी स्थिति में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ क्योंकि 'मुज़ारियान के पास अपनी भूमि को गिरवी रखने और उसे बेचने के हस्तांतरणीय अधिकार थे'।

एस. कृष्णास्वामी आय्यंगर दक्षिण भारत की ग्राम सभाओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हैं। आर.सी. मजूमदार, बर्टन स्टाइन, नोबोरु काराशिमा और वाई. सुब्बरायलू ने ब्रह्मदेय (ब्राह्मणों को दिए जाने वाले राजस्व मुक्त भू-अनुदान) गाँवों की ब्राह्मणों-सभाओं की कार्य-प्रणाली की विस्तार से चर्चा की है। इन गाँवों में ब्राह्मणों ने एक सामुदायिक स्व-शासित निकाय का गठन किया जो सभा कहलाती थी। इन गाँवों की स्थापना अधिकतर पल्लव और चोल राजाओं के राज्यकाल के दौरान हुई थी। गैर-ब्रह्मदेय गाँव काफी पहले स्थापित हुए प्रतीत होते हैं और संख्या के

हिसाब से वे ब्रह्मदेय गाँवों की तुलना में कहीं अधिक थे। गैर-ब्रह्मदेय गाँवों में सभा, उर के नाम से जानी जाती थी। सभा, उर और नट्टार जैसे स्वायत्त निकाय धीरे-धीरे कम होते गए और अंत में विजयनगर काल तक आते-आते लुप्तप्राय हो गए। उनका स्थान नायकों या स्वतंत्र सेनानायकों ने ले लिया।

यदि हम चोल शासन-प्रणाली की ब्राह्मण गाँवों की सभाओं की कार्य प्रणाली को देखें तो हमें चुनाव की प्रणाली और अलग-अलग परिवारों के प्रतिनिधित्व, सदस्यता के लिए उनकी शैक्षिक योग्यता और अलग-अलग कार्य कर रही विभिन्न समितियों की मौजूदगी के बारे में पता चलता है। (दक्खन और दक्षिण भारत में ग्राम समुदाय की कार्य-प्रणाली के लिए, मौजूदा खंड की इकाई 18 देखें)

## 16.2 पंच या पंच मुकद्दम

16वीं शताब्दी के आरंभ से प्राप्त होने वाले वृंदावन दस्तावेज, मध्यकाल में ग्राम समुदाय की कार्य-प्रणाली के स्वरूप पर विशेष प्रकाश डालते हैं। ये दस्तावेज द्विभाषीय हैं अर्थात् फारसी और ब्रजभाषा में लिखित हैं। इनमें मुख्य रूप से गाँव की ज़मीनों की बिक्री का उल्लेख है। इसके फारसी रूपांतर में ग्राम प्रमुख (पंच) को मुकद्दम कहकर संबोधित किया गया है जबकि ब्रजभाषा के रूपांतरण में उन्हें पंच कहा गया है और वे मिलकर (सब पंचन मिलिकरें) काम करने का दावा करते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि पंच और मुकद्दम शब्द समानार्थी शब्दों के रूप में प्रयोग किए जाते थे। पंच एक सामूहिक निकाय था जिसे पंचायत कहा जाता था। उनकी परंपरागत संख्या पाँच प्रतीत होती है परंतु यह संख्या कम भी हो सकती थी और कभी-कभी अधिक भी। वृंदावन दस्तावेजों में उनकी संख्या चार से लेकर तेरह तक अलग-अलग मिलती है।

बेडन पॉवेल इस बात का उल्लेख करते हैं कि भारतीय ग्राम समुदाय, संयुक्त परिवार का एक विस्तारण मात्र था। परंतु इरफान हबीब का तर्क है कि वृंदावन दस्तावेजों में कोई भी दो पंच, एक ही पिता या पितामह के अग्रज प्रतीत नहीं होते हैं। यह नियम ब्राह्मण गाँवों के चोल कालीन नियमों के समान है जिसके अनुसार सभा में किसी एक परिवार का प्रतिनिधित्व आवश्यकता से अधिक नहीं होना चाहिए। बल्कि वह इस बात पर जोर देते हैं कि किसी व्यक्ति द्वारा पंच का पद प्राप्त करने में अनुवांशिक उत्तराधिकार की बड़ी भूमिका थी। ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म परिवर्तन भी किसी व्यक्ति को पंच के पद पर रहने के अधिकार से वंचित नहीं करता था। 1640-42 के अरिथा (आधुनिक राधाकुंड, मथुरा-वृंदावन के निकट एक गाँव) दस्तावेजों में बारी खान का उल्लेख एक पंच के रूप में किया गया है। इससे यह पता चलता है कि इस्लाम धर्म परिवर्तन कर लेने के बाद भी वह पंच के पद पर बना रहा। वृंदावन दस्तावेजों पर किया गया इरफान हबीब का अध्ययन इस बात की पुष्टि करता है कि किसी एक समय पर परिवार का केवल एक ही सदस्य पंच के प्रतिनिधि के रूप में काम करता था। 1594 के वृंदावन दस्तावेज में इस बात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि तेरह पंचों में से तीन मुसलमान थे। परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि प्राप्त अनुलाभों (बिस्वा मुकद्दमी) को सभी वारिसों में बराबर-

बराबर बाँटा जाता था और पंच के रूप में सबसे बड़े सदस्य द्वारा अकेले इसका उपभोग नहीं किया जाता था।

अनुवांशिक उत्तराधिकार के अलावा, जाति, समुदाय, धन, प्रभाव, आदि जैसे अन्य कारक भी पंच के चयन में अपनी भूमिका निभाते थे।

1966 के अपने लेख में ग्रोवर मुगल काल के दौरान ग्राम समुदाय की मौजूदगी को अस्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि 'मुगल काल के दौरान ग्राम समुदाय के एक हिस्से के रूप में "पंचायत या गाँव के बुजुर्गों की परिषद" की संकल्पना का पता लगाना मुश्किल है। ज़मींदार और मुकदम परिवारों और अन्य सामान्य कृषकों (रियाया) की बैठक गाँव की चौपाल पर होती थी जहाँ कृषक समुदाय के हितों से संबंधित मामलों पर चर्चा की जाती थी। चौपाल का प्रयोग जाति संबंधी नियमों पर चर्चा करने और उन्हें लागू करने के लिए जाति समूहों की चर्चा के एक स्थान के रूप में भी किया जाता था। केवल इस अर्थ में यह कहा जा सकता है कि, मुगल काल के दौरान ग्राम समुदाय मौजूद था। इस प्रकार ग्रोवर के अनुसार, 'जाति' ग्राम समुदायों की कार्य-प्रणाली, जातिगत पंचायत के रूप में अधिक थी। वह स्पष्ट रूप से इस बात से इंकार करते हैं कि 'इसकी कृषि जीवन, राजस्व प्रशासन और सामाजिक व्यवहार से संबंधित मामलों में कोई भूमिका थी।

### 16.3 कार्य और शक्तियाँ

ग्रोवर का तर्क है कि मध्यकाल में ग्राम समुदाय से संबंधित कोई "सामुदायिक भूमि" या "सामूहिक वित्तीय पूल" नहीं था। उनका मानना है कि, 'गाँव की बंजर भूमि, चरागाह और समीपस्थ जंगल का स्वामित्व सरकार के पास था, हालाँकि गाँव का यह अधिकार था कि ज़मींदारी और मुकदमों परिवारों को दिए जाने वाले नाम-मात्र के उप-कर (अबवाब) के बदले वह चरागाह भूमि का इस्तेमाल कर सकें, जंगल से लकड़ी प्राप्त कर सकें और तालाबों से मछली पकड़ सकें। ग्रोवर के अनुसार मलबा (गाँव के अधिकारियों के खर्चों को वहन करने के लिए सामूहिक ग्राम निधि) भी मुगल काल के दौरान हमेशा एक गैर-कानूनी उप-कर रहा। जबकि 'खर्च-ए देह (गाँव के आकस्मिक खर्च) किसी भी ग्राम समुदाय में कभी भी गाँव की रियाया (सामान्य कृषकों) का सामूहिक पूल नहीं रहा। बहादुर शाह प्रथम (1710) के फरमान को उद्धृत करते हुए वह तर्क देते हैं कि उसके द्वारा चरागाह और जंगल से प्राप्त किए जाने वाले घास और चारे पर लगाए गए प्रभारों को गैर-कानूनी घोषित किया गया था और भविष्य में मुकदम द्वारा इसके संग्रहण पर रोक लगा दी गई थी। यहाँ तक कि 19वीं शताब्दी में, उत्तर भारत के मुख्य भागों में बंजर भूमि और जंगल की भूमि अधिकतर ज़मींदार के अधिकार क्षेत्र में थी और उस पर ग्राम समुदाय द्वारा इस्तेमाल किए जाने संबंधी अधिकार सीमित थे।

परंतु वृंदावन दस्तावेजों के विश्लेषण के आधार पर इरफान हबीब का तर्क है कि ग्राम समुदाय के निश्चित रूप से बंजर भूमि पर अधिकार थे और सामूहिक वित्तीय पूल मौजूद था। वृंदावन दस्तावेज उस प्राधिकार की सीमा और स्वरूप को भी प्रदर्शित करते हैं जिसका इस्तेमाल गाँव की सामूहिक भूमि पर पंच या पंचायत द्वारा किया जाता था। उनका मानना है कि गाँव की भूमि (ज़मीन-ए मौजा) पर पंचायत नियंत्रण रखती थी चाहे वह तालाब हो, बंजर भूमि हो या कृषि भूमि/

कृषियोग्य भूमि। अरिथा दस्तावेजों से इस बात की पुष्टि होती है कि वे गाँव की बंजर भूमि को बेच सकते थे या पट्टे पर दे सकते थे या इसे जोतने की अनुमति दे सकते थे। वृंदावन दस्तावेजों में से एक दस्तावेज यह दर्शाता है कि 1594 में एक पंच ने वृंदावन के निकट एक गाँव की बेकार पड़ी भूमि में से 4 बिस्वा भूमि किसी इमारत के निर्माण के लिए एक बैरागी को प्रदान की। यहाँ हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ग्राम समुदाय को विभिन्न किसानों द्वारा जोती जा रही भूमि को बेचने का अधिकार नहीं था। परंतु यदि कोई बाहरी व्यक्ति (पाई काश्त) किसी गाँव में भूमि को जोतना चाहता था तो ग्राम समुदाय की अनुमति अनिवार्य प्रतीत होती है। महाराष्ट्र से प्राप्त थलजादा रिकॉर्ड भी यह दर्शाते हैं कि एक नर्तकी श्यामा नैकिन ने इन्दापुर के सिद्धेश्वर मंदिर और पीरचाद खान की दरगाह के प्रति की गई सेवाओं के बदले 60 बीघा भूमि का अनुदान प्राप्त किया।

महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि गाँव की जमीन की बिक्री से प्राप्त धनराशि का वितरण कैसे किया जाता था? मुगल रिकार्ड में इस बारे में कुछ सीमा तक उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि गाँव की बेकार पड़ी भूमि को बेचने से संबंधित पंच को उसका हिस्सा मिल जाता था, परंतु बिक्री से प्राप्त धनराशि का एक बड़ा भाग, गाँव के 'सामूहिक वित्तीय पूल' में जाता था। रसिकदास को संबोधित औरंगजेब के फरमान में गाँव के सामूहिक पूल में जाने वाले बच्च (भैय्याचारा समुदाय द्वारा भुगतान की गई राजस्व दर) और बेहरी माल (सामूहिक पूल के प्रति समुदाय द्वारा भुगतान किए गए राजस्व) के बारे में स्पष्ट रूप से वर्णन मिलता है। एस.पी. गुप्ता एक ऐसे उदाहरण का उल्लेख करते हैं जब पंचायत की भूमि पर भी कर लगाया गया। उनका तर्क है कि इससे गाँव में, 'भूमि पर सामुदायिक स्वामित्व की मौजूदगी का संकेत मिलता है।

इस सामूहिक वित्तीय पूल के खर्च के पैटर्न को देखना दिलचस्प होगा। इस प्रकार प्राप्त हुई धनराशि का एक बड़ा भाग, राज्य की राजस्व संबंधी माँग का भुगतान करने पर खर्च किया जाता था। विभिन्न पदाधिकारियों के पारिश्रमिक और अनुलाभों का भुगतान भी इस निधि से किया जाता था। गाँव का व्यय (खर्च ए देह) भी इसी निधि किया जाता था। इसी निधि से पटवारी, कानूनगो और चौधरी को भत्तों का भुगतान और उनकी फीस दी जाती थी। यहाँ तक कि गाँव के सामूहिक ऋणों का भुगतान भी इसी निधि से किया जाता था। अधिशेष निधि उपलब्ध होने की स्थिति में, गाँव के सामूहिक पूल से पंच धनराशि उधार दे सकता था जैसे उत्पादन के उद्यमों - बीजों की अधिप्राप्ति, नालियाँ खोदने, आदि में गाँव के सामूहिक पूल से ग्राम समुदाय द्वारा धनराशि उधार दी जा सकती थी। यह सभी लेन-देन ग्राम समुदाय (पंचायत/पंच) के माध्यम से किए जाते थे। इन कार्यकलापों पर आम ग्रामवासियों का कोई नियंत्रण नहीं था। गाँव के कुलीन लोगों (जिन्हें कालांतरान्, मुतघल्लिबान, मुकद्दम, आदि के नाम से संबोधित किया जाता था) को मुगल अधिकारियों द्वारा कभी सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा गया। अकबर (1556-1605) का दीवान टोडर मल उन्हें ऐसा 'झूठा और ढीठ' कहकर संबोधित करता है जो अपने हिस्से (राजस्व माँग का हिस्सा) का भी भुगतान नहीं करते और जिसे वे रेज़ा रियाया (आम कृषकों) पर हस्तांतरित कर देते थे। (हबीब, 1999)

पश्चिमी राजस्थान पर किए गए बी.एल. भदानी के अध्ययन से भी इसी प्रकार के सामूहिक पूल की मौजूदगी का पता चलता है। गाँव सेवादी, परगना जालौर के

रिकार्ड से हमें 'गाँव के लिए काम' के संदर्भ का पता चलता है जिसमें 'व्यक्तियों की संख्या के अनुसार ग्रामीण सेवकों को पारिश्रमिक के रूप में गेहूँ दिया जाता था'। ग्राम समुदाय को ग्रामीण सेवकों का पारिश्रमिक भुगतान किए जाने के लिए अग्रिम धनराशि की विद्यमानता से गाँव में सामूहिक निधि की मौजूदगी का पता चलता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उस निधि के लिए किसानों से शुल्क एकत्र किया जाता था।

मध्य काल में दक्खन में भी ग्राम प्रमुख या ग्राम सभा को अधिकार था कि वह बंजर भूमि (*गटकूल जमीन* - निर्वासित परिवारों की जमीन) या पद जमीन (लम्बे समय तक न जोते जाने के कारण खाली छोड़ दी गई भूमि) का कब्जा ले सके या उसे बेच सके। मराठी रिकार्ड में ग्राम प्रमुख द्वारा ऐसी भूमि पर मिरास भूमि के रूप में कब्जा कर लेने का उल्लेख मिलता है, जबकि ऐसी भूमियों को मिरासी तथा इनाम के रूप में बेचने का भी उल्लेख है। इस प्रकार मध्यकाल में दक्खन के ग्राम प्रमुखों का 'उपयुक्त' बंजर भूमियों पर अधिकार था, परंतु ऐसे मामले में उसे मिरास-दर के रूप में इस पर भारी भूमि कर का भुगतान करना पड़ता था। इसीलिए फुकुजावा (1999) का तर्क है कि ज्यादातर गाँवों के प्रमुख बंजर भूमि पर कब्जा नहीं करते थे और यह भूमि 'अनुपयुक्त' के रूप में पड़ी रहती थी।

दक्खन में आमतौर पर बंजर भूमि पर फैसेले ग्राम सभा (*मजलिसी समाकुल पंधार*) द्वारा किए जाते प्रतीत होते हैं। *मिरास* भूमि के रूप में बंजर भूमि की बिक्री में आमतौर पर ग्राम सभा को नकद धनराशि का भुगतान नहीं होता था। फुकुजावा द्वारा विश्लेषण किए गए तीन दस्तावेजों में से केवल एक मामले में ही भूमिधारक ने ग्राम सभा को 100/- रुपये का भुगतान किया। ऐसे मामले में जहाँ धन दिया जाता था, भूमिधारक बाहरी व्यक्ति होता था। इससे पता चलता है कि गाँव के व्यक्तियों को मिरास भूमि के रूप में भूमियों के आवंटन/बिक्री के मामले में ग्राम सभा को नकद लेनदेन किए जाने की आवश्यकता नहीं थी। परंतु बाहरी किसान के मामले में उस किसान विशेष को 'भूमि के लिए कीमत का भुगतान करना पड़ता था। यह व्यवस्था उत्तरी भारत में प्रचलित व्यवस्था के विपरीत प्रतीत होती है, जहाँ बिक्री से प्राप्त धन में से एक हिस्सा ग्राम प्रमुख को जाता था और बाकी राशि "सामूहिक वित्तीय पूल" में जाती थी। इसी प्रकार, दोनों क्षेत्रों में लोगों के शामिल होने में भी भिन्नता प्रतीत होती है। उत्तरी भारत में, गाँव की भूमि की बिक्री में गाँव के *पंच/मुकदम* शामिल होते थे, जबकि मध्यकालीन दक्खन से संबंधित मराठी दस्तावेजों से पता चलता है कि गाँव की बंजर भूमि की बिक्री विशेष के दौरान 34 व्यक्ति उपस्थित थे। यहाँ, ग्राम सभा (*मजलिस समाकुल पंधार*) के अलावा, अन्य मौजूद व्यक्ति थे - एक एजेंट (*कमाविसदार*), *इनामदार* (गाँव में *इनाम* भूमि का धारक), तीन ग्राम प्रमुख (*पाटिल*), सात किसान, एक बढई (*सूतर*), एक माली, एक लुहार, एक अतिथि भाट (*भाट मेहमान*), दो ज्योतिषी-लेखाकार (*जोशी कुलकर्णी*), एक सहायक ग्राम प्रमुख (*चौगुला*), एक नाई (*न्हावी*), एक महार, एक मंदिर की देख-रेख करने वाला (*गुराव*) और क्षेत्र का देशपांडे (लेखाकार), तथा आस-पास के गाँवों एवं बस्तियों के अन्य तरह व्यक्ति। (फुकुजावा, 1991) गाँव के सामूहिक खर्चों (भूमि कर, आदि का भुगतान) को पूरा करने के लिए ग्राम सभा इनाम भूमि के रूप में उस भूमि का विक्रय कर सकती थी, जिस पर भूमिधारक को किसी कर का भुगतान करने की आवश्यकता नहीं थी, बल्कि इसके बदले, उस भूमि पर देय कर



पूरे गाँव में विभाजित किया जाता था। फुकुजाया इससे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यदि भूमि को मिरास भूमि के रूप में बेचा जाता था तो भूमि धारक (नया *मिरासदार*) को ही अत्यधिक भूमि कर वहन करना पड़ता था, जबकि यदि भूमि की बिक्री इनाम भूमि के रूप में की जाती थी तो भूमि धारक (नया इनामदार) की ओर से एक समूह के रूप में ग्रामवासियों का यह दायित्व था कि वे भू-कर का भुगतान करें, यदि इनाम काफी बड़े पैमाने पर होता था। इस स्थिति के कारण शायद बहुत से गाँवों की बंजर भूमि, बिना निपटान किए 'बंजर' के रूप में छोड़ दी गई प्रतीत होती है।

हमें दक्षिण भारत में भी महासभ्यार (महासभा के सदस्यों) द्वारा गाँव की भूमि की बिक्री के संदर्भ प्राप्त होते हैं। नोबोरु काराशिमा (1992) ऐसे अनेक बिक्री संबंधी दस्तावेजों का हवाला देते हैं। 1241 ईस्वी में राजराजा चोल तृतीय के शासन काल के अभिलेखों में से एक अभिलेख में इस बात का उल्लेख है कि उत्कल की महासभा के सदस्यों द्वारा 180 मादास के लिए एक गाँव की बिक्री (उर-विलाई-पीरामानम) के माध्यम से पूर्वी बस्ती (पीडागई) को बेचा गया। इसमें सिंचित भूमि, बाग, आवासीय क्षेत्र, मकान, पेड़, कुआँ, जल, सिंचाई, सड़क, रास्ता, तालाब, बांध, आदि शामिल थे। सभा ने इस गाँव (बस्ती) को 'बिक्री करने, गिरवी रखने, पुनः बेचने, विरासत में देने और दान में देने के अधिकार प्रदान किए। इससे, दक्षिण भारत में ग्राम समुदाय द्वारा गाँव की भूमि को बेचने के अधिकार के मौजूद होने की पुष्टि होती है। हालाँकि ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें केवल आवश्यक रूप से बंजर भूमि ही शामिल नहीं थी।

ग्रामीण सेवक और कारीगर, ग्राम समुदाय के एक महत्वपूर्ण संघटक थे। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। इस मुद्दे पर विस्तृत विश्लेषण इकाई 17 और 18 में दिया गया है। यहाँ हम केवल उनकी मौजूदगी का एक संक्षिप्त विवरण ही प्रस्तुत करेंगे। वृंदावन दस्तावेजों में भी भूमि के हस्तांतरण का जिक्र तो मिलता है, परंतु इन दस्तावेजों में इस बात का उल्लेख नहीं है कि गाँव के कारीगरों और सेवकों का भरण-पोषण कैसे किया जाता था। हालाँकि हमें, चमड़े के काम में रत व्यक्तियों के पास भूखण्ड विशेष के होने के संदर्भ मिलते हैं, परंतु उनकी सम्पत्ति की शर्तों के बारे में अधिक जानकारी नहीं है।

भौंच (गुजरात) से प्राप्त 1776 की एक रिपोर्ट, कारीगरों के भरण-पोषण के मुद्दे पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है। इसके अनुसार, "प्रत्येक गाँव की भूमि का एक निश्चित भाग (प्रथा के अनुसार) उन कारीगरों और श्रमिकों का भरण-पोषण करने के लिए कर मुक्त होना चाहिए जिनकी सेवाएँ गाँव के लिए नितांत आवश्यक हैं"। जजमानी प्रथा के संबंध में आर.एस. शर्मा का तर्क है कि दूसरे शहरी पतन की अवधि (7-9वीं शताब्दी) के दौरान शहरी क्षेत्रों के बेरोजगार कारीगर अपनी आजीविका प्राप्त करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में पलायन कर गए और इससे, समय के साथ-साथ, जजमानी प्रथा का जन्म हुआ।

सिंघ पर अपने *संस्मरणों* में थॉनस सिंघ के संबंध में इसी प्रकार की सूचना प्रदान करता है, जहाँ बढई को रहट की वार्षिक मरम्मत के लिए और कुम्हार को मिट्टी के बर्तनों की आपूर्ति करने के लिए फीस प्रदान की जाती थी। जेम्स मिल, हेगल,

कार्ल मार्क्स और बेडन पॉवेल भी ग्राम समुदाय के साथ गाँव के सेवकों और कारीगरों के संबद्ध होने का वर्णन करते हैं। परंतु एच.डब्ल्यू. वाइजर यह मानना है कि प्रथागत रूप से सेवकों और कारीगरों का संबद्ध रहना उन्हें पूरे गाँव के साथ सम्बद्ध नहीं करता था बल्कि वे उन्हें गाँव के अंदर ग्राहक विशेष के परिवारों के समूहों, अपने यजमानों के साथ ही सम्बद्ध करता था। लुई दयूमों का यह तर्क है कि यह पुजारी और उसके यजमानों के बीच होने वाले संबंधों का ही एक विस्तारण था।

18वीं शताब्दी के महाराष्ट्र दस्तावेजों के आधार पर एच. फुकुजावा लिखते हैं कि सेवक और कारीगर, पूरे गाँव से अपने पुश्तैनी भू-आबंटन (*वतन/मिरास*) का दावा करते थे। इन सेवकों को बलूतेदार कहा जाता था और वे बलूतों के रूप में जाना जाने वाला कृषि उपज का अपना हिस्सा प्राप्त करते थे। विल्सन की शब्दावली में इस प्रथा पर विस्तार से चर्चा की गई है।

दक्खन और गुजरात में तथा अन्य स्थानों पर भी गाँव के कारीगरों और सेवकों, जिनकी सेवाएँ जैसे कूड़ा साफ करने वाले, धोबी, नाई, बढ़ई, लोहार, और इसी प्रकार के अन्य व्यक्ति, जो गाँव के कार्य निष्पादन के लिए आर्थिक और सामाजिक इकाई के रूप में अनिवार्य थे, को अपने भरण-पोषण के लिए कर-मुक्त भूमि प्राप्त होती थी। विशेष अवसरों पर, ग्रामीण सेवकों के परिवारों को ग्राम समुदाय से नकद और वस्तु के रूप में छोटे-मोटे भत्ते भी प्राप्त होते थे।

सभी प्रकार के कारीगरों और सेवकों का अपना महत्त्व था। चमड़े का काम करने वाला व्यक्ति गाँव में उतना ही महत्त्वपूर्ण और आवश्यक था जितना एक पुजारी। दाई की सेवाएँ, जो निम्न जाति की महिलाओं द्वारा उपलब्ध कराई जाती थी, प्रत्येक परिवार के लिए अनिवार्य थी चाहे वह उच्च जाति की हो या निम्न जाति की। इसी प्रकार नाई केवल बाल काटने के लिए ही आवश्यक नहीं था बल्कि सामाजिक-धार्मिक समारोह के संचालन के लिए भी आवश्यक था। यह तथ्य 19वीं शताब्दी में पूरे भारत में आम था और बेडन पॉवेल इस प्रथा को हर प्रकार के गाँवों में पाते हैं। गाँव के कारीगरों का जमींदारों और खेती करने वाले समुदाय के साथ सामाजिक-आर्थिक संबंध पीढ़ी-दर-पीढ़ी जारी रहा।

---

## 16.4 सारांश

---

कार्ल मार्क्स का अनुमान है कि 'गतिहीन' ग्राम समुदाय भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगति में अवरोध के लिए जिम्मेदार थे। परंतु राष्ट्रवादी इतिहासकार यह मानते हैं कि ब्रिटिश भू-कर और उनकी अन्य संबंधित आर्थिक नीतियों के कारण औपनिवेशिक काल के दौरान भारत धीरे-धीरे आर्थिक रूप से पिछड़ गया।

ब्रिटिश शासन काल के अधीन ग्राम समुदायों की भूमिका और उनके उत्थान/पतन संबंधी बहस जारी है परंतु ग्राम समुदायों की गाँवों/ग्रामवासियों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निश्चित रूप से एक महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इस प्रकार, कोई व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि भारतीय ग्राम समुदाय, मध्यकाल में एक जीवन्त संस्था थी।

- 1) ग्राम समुदाय को परिभाषित कीजिए। मध्यकाल के दौरान ग्राम समुदाय की भूमिका और कार्यों का परीक्षण कीजिए।
- 2) गाँव क्या है? मध्यकाल में एक कॉरपोरेट निकाय के रूप में ग्राम समुदाय के महत्त्व पर चर्चा कीजिए।



ignou  
THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY